मानव-सेवा

इस्लाम की नज़र में

मौलाना सय्यद जलालुद्दीन उमरी

अनुवाद

मुहम्मद आबिद हामिदी

विषय-सूची

ООО

'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

"शुरू अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है।"

मानव-सेवा का महत्व

इस्लाम ने इनसानों की सेवा और उनके साथ अच्छा व्यवहार करने को बड़ी अहमियत दी है। उसने इनसानों की सेवा (ख़िदमत) को ख़ुदा की सेवा के समान बताया है। उसने कहा कि ख़ुदा के बन्दों की मदद करना हक़ीक़त में ख़ुदा की मदद करना है। उनके काम आना ख़ुदा के काम आना है। अगर आपके सामने ख़ुदा का कोई बन्दा हाथ फैलाए और आप उसका हाथ ख़ाली लौटा दें तो मानो आपने ख़ुदा के हाथ को ख़ाली लौटा दिया। कोई बीमार आपकी मदद का मुहताज हो और आपने उसकी मदद करने से इनकार किया तो मानो आपने ख़ुदा की मदद से इनकार किया। ख़ुदा को ख़ुश करने के लिए ज़रूरी है कि उसके बन्दों को ख़ुश किया जाए और उनको राहत पहुँचाई जाए। आसमानवाला अपनी रहमतें उसी वक़्त उतारता करता है जबकि ज़मीनवालों पर रहमत, प्यार-मुहब्बत और अपनेपन का सुलूक किया जाए। एक हदीस में इस हक़ीक़त को बहुत ही प्रभावी और दिल -नशीन अन्दाज़ में बयान किया गया है—

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने कहा, "क़ियामत (प्रलय) के दिन अल्लाह इनसान से कहेगा : ऐ आदम के बेटे! मैं बीमार पड़ा रहा लेकिन तूने मेरी इयादत (देख-भाल) नहीं की। इनसान घबराकर कहेगा : ऐ मेरे पालनहार! तू तो सारे जहान का परवरदिगार है, तू कब बीमार था और मैं तेरी इयादत कैसे करता? अल्लाह तआला कहेगा : क्या तुझे नहीं मालूम था कि मेरा फ़ुलाँ बन्दा बीमार है। लेकिन इसके

बावजूद तू उसकी ख़ैर-ख़बर लेने के लिए नहीं गया। अगर तू उसके पास जाता तो मुझे वहाँ पाता। फिर ख़ुदा कहेगा : ऐ आदम के बेटे! मैंने तुझसे खाना माँगा, लेकिन तूने मुझे खाना नहीं दिया। इनसान कहेगा : ऐ सारे जहान के पालनहार! तू कब भूखा था और मैं तुझे कैसे खाना खिलाता? अल्लाह फ़रमाएगा कि तुझे याद नहीं कि मेरे फ़ुलाँ बन्दे ने तुझसे खाना माँगा था, लेकिन तूने उसे नहीं खिलाया। अगर तूने उसका सवाल पूरा किया होता, तो आज उसका बदला यहाँ पाता। इसी तरह अल्लाह तआला फ़रमाएगा कि ऐ आदम के बेटे! मैंने तुझसे पानी माँगा, लेकिन तूने मुझको पानी नहीं पिलाया। इनसान कहेगा कि ऐ दोनों जहान के परवरदिगार! तू कब प्यासा था और मैं तुझे पानी कैसे पिलाता? अल्लाह फ़रमाएगा : मेरे फ़ुलाँ बन्दे ने तुझसे पानी माँगा था, लेकिन तूने उसकी प्यास बुझाने से इनकार कर दिया था। अगर तूने उसकी प्यास बुझाई होती तो आज उसका बदला यहाँ पाता।"

(हदीस : मिशकात, मुस्लिम)

(1) मानव-सेवा इबादत है

अल्लाह की नज़दीकी और ख़ुशी हासिल करने के दो तरीक़े हैं— एक यह कि इनसान अपने जज़्बात और एहसासात को उसकी नज़्र कर दे। उसके सामने हाथ बाँधकर खड़ा हो जाए। अपना सिर झुका दे और सजदे में गिर जाए। इसका सबसे बड़ा प्रदर्शन नमाज़ है। दूसरा तरीक़ा यह है कि ख़ुदा के बन्दों की सेवा और उनके साथ अच्छा व्यवहार करे। ज़कात इसका एक अहम ज़रीआ है। नमाज़ जिस्मानी इबादत है और ज़कात माली इबादत। नमाज़ बन्दे की तरफ़ से ख़ुदा की महानता और बड़ाई और अपनी बन्दगी का एलान है और ज़कात इस बात को ज़ाहिर करती है कि इनसान के दिल में हमदर्दी और ग़मख़ारी

का ज़ज़्बा मौजूद है और वह दूसरों के लिए अपना धन-दौलत ख़र्च कर सकता है। क़ुरआन मजीद ने नमाज़ और ज़कात का ज़िक्र आमतौर से एक साथ किया है; दोनों पर एक ही जैसा ज़ोर दिया है और इनकी बार-बार ताकीद की है। इसका मतलब यह है कि माली इबादत भी उसके नज़दीक जिस्मानी इबादत से कम अहम नहीं है। ख़ुदा को ख़ुश करने के लिए वह जिस तरह जिस्मानी इबादत को ज़रूरी समझता है उसी तरह माली इबादत को भी ज़रूरी क़रार देता है। वह जिस दीन की माँग करता है वह सिर्फ़ यह नहीं है कि इनसान ख़ुदा के दरबार में अक़ीदत (आस्था) और मुहब्बत के साथ झुक जाए, बल्कि यह भी है कि इनसान अपनी कमाई हुई दौलत में ख़ुदा के बन्दों का हक़ तस्लीम करे और ज़रूरतमन्दों पर ख़र्च करे।

क़ुरआन मजीद में है—

> "उनको बस इस बात का हुक्म दिया गया था कि वे अल्लाह की बन्दगी करें अपने दीन को उसके लिए ख़ालिस करके, बिलकुल यकसू होकर, और नमाज़ क़ायम करें और ज़कात दें; यही सही और मज़बूत दीन (धर्म) है।"
>
> (क़ुरआन, 98:5)

(2) इबादत में कमी की पूर्ति सेवा से

क़ुरआन मजीद ने मानव-सेवा और अच्छे व्यवहार को इतनी ज़्यादा अहमियत दी है कि कुछ मौक़ों पर इसको बदनी इबादत का बदल क़रार दिया है।

नमाज़ की तरह रोज़ा भी एक बदनी इबादत (उपासना) है, जिसमें इनसान ख़ुदा के लिए भूखा-प्यासा रहता है और अपनी ख़ाहिशात और जज़्बात पर क़ाबू पाने की कोशिश करता है। क़ुरआन ने मुसीबत में

फँसे इनसानों की मदद और ख़ैरख़ाही को इस ख़ालिस बदनी इबादत के बराबर क़रार दिया है। मानो दोनों एक हैसियत के काम हैं और ख़ुदा से नज़दीकी में एक समान दर्जा रखते हैं।

रोज़े के सिलसिले का एक शुरुआती हुक्म यह था कि जो आदमी ताक़त रखने के बावजूद रोज़ा न रख सके वह एक ग़रीब को खाना खिला दे। (क़ुरआन, 2:184)

अगर कोई मुसलमान किसी ऐसी क़ौम के आदमी को क़त्ल कर दे जिससे इस्लामी राज्य का समझौता हो तो उसे उसके घरवालों को तयशुदा रक़म दीयत (ख़ूँबहा) देनी होगी और एक मुसलमान ग़ुलाम आज़ाद करना होगा। जो इसकी ताक़त अपने अन्दर न पाए उसे लगातार दो महीने के रोज़े रखने होंगे। (क़ुरआन, 4:92)

जो आदमी अपनी बीवी को माँ क़रार दे और फिर उससे रुजूअ करना चाहे तो हुक्म है कि वह कफ़्फ़ारा के तौर पर एक ग़ुलाम आज़ाद करे या लगातार साठ रोज़े रखे या साठ मुहताजों को खाना खिलाए।

(क़ुरआन, 58:3,4)

क़सम का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) यह बयान किया गया है कि दस मुहताजों को खाना-कपड़ा दिया जाए या किसी ग़ुलाम को आज़ाद किया जाए या तीन रोज़े रखे जाएँ। (क़ुरआन, 5:89)

हज, नमाज़ और रोज़े की तरह ख़ालिस बदनी इबादत नहीं है, क्योंकि इसमें माल भी ख़र्च करना पड़ता है। लेकिन इसका माली इबादत होने के मुक़ाबले में बदनी इबादत होना ज़्यादा नुमायाँ है। इस सिलसले का एक हुक्म यह है कि जो आदमी हज का समय आने तक 'उमरा' से फ़ायदा उठाना चाहे, वह क़ुरबानी करे और अगर क़ुरबानी का जानवर न मिल रहा हो तो दस रोज़े रखे।" (क़ुरआन, 2 : 196)

इन हुक्मों में ग़ुलाम आज़ाद करने, मुहताजों को खाना-कपड़ा देने और क़ुरबानी के ज़रीए ग़रीबों की मदद को रोज़े के समान हैसियत दी गई है। बदनी इबादतों में जो कमी रह जाए उसकी तलाफ़ी (क्षतिपूर्ति) की भी यह सूरत बताई गई है कि ख़ुदा के बन्दों के साथ ख़ैरख़ाही और मदद की जाए। 'इहराम' की हालत में बाल मुँडवाने की मनाही है। अगर किसी तकलीफ़ की वजह से किसी को बाल मुँडवाने पड़ें, तो हुक्म है कि रोज़े रखे या क़ुरबानी करे, या सदक़ा (दान के रूप में फ़िदया) दे। (क़ुरआन, 2:196)

रमज़ान के रोज़ों के बाद सदक़ाए-फ़ित्र रखा गया है। और इसकी वजह यह बयान की गई है कि इससे रोज़ों में जो बेकार और बेहूदा अमल हो जाते हैं उनकी भरपाई होती है। (हदीस : अबू-दाऊद)

इससे भी आगे की बात यह है कि जो लोग अपने बुढ़ापे या बीमारी की वजह से रोज़ा रखने की ताक़त ही न रखते हों, उनको रोज़े के बदले एक मुहताज को दोनों वक़्त खाना खिलाने का हुक्म है।

ख़ुदा और इनसान के सम्बन्ध को मज़बूत करने में बदनी इबादत को बहुत ही ज़्यादा अहमियत हासिल है। ज़िक्र व फ़िक्र तस्बीह, रुकू-सजदा और दुआ के बग़ैर किसी भी आदमी को ख़ुदा की नज़दीकी कभी नहीं मिल सकती। क़ुरआन मजीद ने मानव-सेवा और अच्छे व्यवहार को इसका बदल क़रार देकर माली इबादत को वह मक़ाम अता-क्रर दिया कि मज़हब के निज़ाम (धार्मिक व्यवस्था) में इससे बुलन्द मक़ाम की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

मानव-सेवा के विभिन्न रूप

ख़ुदा के बन्दों की ख़िदमत (सेवा) और उनके साथ अच्छे सुलूक की कोई एक तुयशुदा शक्ल नहीं है। इसकी बहुत-सी सूरतें हो सकती हैं—

(1) वक़्ती मदद

एक शक्ल यह है कि वक़्ती तौर पर इनसानों की ज़रूरतों को पूरा कर दिया जाए। कभी-कभी इनसान वक़्ती और हंगामी मदद का सख़्त मुहताज होता है और इसमें थोड़ी-सी ग़फ़लत भी उस आदमी को बहुत अधिक नुक़सान पहुँचा सकती है। किसी मरीज़ को वक़्त पर दवा न मिले या जो आदमी भूख से तड़प रहा हो, उसकी भूख तुरन्त न मिटाई जाए, तो उसकी ज़िन्दगी ही के ख़तरे में पड़ जाने की सम्भावना है। वक़्ती मदद का मुहताज सिर्फ़ वही आदमी नहीं होता जो ग़रीब और मुहताज हो, बल्कि इसकी ज़रूरत ख़ुशहाल इनसान को भी पेश आ सकती है। इसका ताल्लुक़ माली हैसियत से ज़्यादा उन हालतों से है जिनमें वह हंगामी तौर पर घिर गया है। रास्ते में किसी की जेब कट जाए और उसका अपने घर पहुँचना मुश्किल हो जाए तो आपको उसकी मदद ज़रूर करनी चाहिए, ताकि वह आसानी के साथ अपने घर पहुँच सके, चाहे वह अपनी जगह आपकी मदद का मुहताज न हो। बड़े से बड़ा मालदार आदमी भी किसी वक़्त मदद के लिए हाथ फैलाने पर मजबूर हो जाए तो उसका हक़ है कि उसकी ज़रूरत पूरी की जाए। यही हक़ीक़त एक हदीस में इस तरह बयान की गई है जिसकी रिवायत इमाम हुसैन (रज़ि॰) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से की है—

> "सवाल करनेवाला अगर घोड़े पर सवार हो तो भी उसका तुम पर हक़ है।" (हदीस : मिश्कात, अहमद, अबू-दाऊद)

एक दूसरी हदीस है। हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"किसी भूखे पेट को भर देना बेहतरीन सदक़ा (दान) है।"

(हदीस : मिशकात, बैहक़ी)

उम्मे-यज़ीद (रज़ि॰) ने एक बार अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से पूछा कि कभी कोई माँगनेवाला मेरे दरवाज़े पर पहुँच जाता है और मेरे पास उसे देने के लिए कुछ नहीं होता तो बड़ी शर्म महसूस होती है। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "माँगनेवाले को ख़ाली हाथ न लौटाओ। कुछ न हो तो जला हुआ खुर ही उसे दे दो।"

(हदीस : मिश्कात, अहमद, अबू-दाऊद, तिरमिज़ी)

(2) ज़रूरत का स्थाई समाधान

मानव-सेवा की दूसरी सूरत यह है कि जो आदमी परेशानियों और कठिनाइयों में घिरा हुआ है उसके लिए ऐसी आसानियाँ मुहैया की जाएँ कि वह हमेशा के लिए उन कठिनाइयों से बाहर निकल आए। उसकी परेशानियों का अस्थायी नहीं, बल्कि स्थायी समाधान ढूँढा जाए और जिन वजहों से ज़िन्दगी की भाग-दौड़ में वह पीछे रह गया है उनको दूर किया जाए। इसमें कोई शक नहीं कि किसी भूखे के साथ यह भी अच्छा सुलूक है कि उसे दो रोटियाँ खिला दी जाएँ या किसी नंगे को अपना तन ढाँकने के लिए नया या पुराना कपड़ा दे दिया जाए; लेकिन उनके साथ सही और अच्छा सुलूक और उनकी सबसे बड़ी ख़िदमत यह होगी कि उनकी ग़रीबी का इलाज किया जाए और उनको इस क़ाबिल बनाया जाए कि वे भूखे और नंगे न रहें और अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए हर वक़्त उनको किसी का मुहताज न होना पड़े।

एक हदीस में आया है कि बेहतरीन सद्क़ा यह है कि किसी को तोहफ़े के रूप में कुछ दिनों के लिए दूधवाली ऊँटनी या बकरी दे दी

जाए, ताकि वह सुबह-शाम उसका दूध पीता रहे और दूध ख़त्म होने के बाद वापस कर दे। (हदीस : मिश्कात, बुख़ारी, मुस्लिम)

एक दूसरी हदीस में है कि जो आदमी कुछ दिन के लिए किसी को दूध देने वाली बकरी दे या रुपए कर्ज़ दे या किसी को रास्ता दिखा दे, तो उसको इतना सवाब (पुण्य) होगा जितना एक ग़ुलाम आज़ाद करने का सवाब होता है। (हदीस : मिश्कात, तिरमिज़ी)

जब कुछ दिन के लिए किसी ज़रूरतमन्द की ज़रूरत पूरी करने की यह फ़ज़ीलत (श्रेष्ठता) है तो इससे अन्दाज़ा किया जा सकता है कि किसी की ग़रीबी और मुहताजी को ख़त्म करके उसे सुकून की ज़िन्दगी बसर करने के क़ाबिल बनाना कितना अधिक सवाब का काम होगा! और ख़ुदा के यहाँ इसका कितना बड़ा अज्र (बदला) होगा।

(3) आम लोगों की भलाई के काम

इनसानों की ख़िदमत और उनके साथ अच्छे व्यवहार की तीसरी शक्ल जन-सेवा (रिफ़ाहे-आम) के काम हैं। स्कूल और अस्पताल चलाना, सड़कें और पुल बनवाना, मुसाफ़िरख़ानों और यतीमख़ानों का इन्तिज़ाम करना जन-सेवा की ये अलग-अलग शक्लें हैं। इस तरह के कामों में एक आदमी के फ़ायदे की जगह पूरे समाज का फ़ायदा सामने होता है। इसलिए इनकी अहमियत भी बहुत ज़्यादा है। किसी आदमी को अच्छी तालीम देकर समाज में एक सम्मानित स्थान तक पहुँचाना, ख़ास उस आदमी की सेवा है और किसी अच्छे स्कूल का चलाना जहाँ से अन-गिनत बच्चे ज्ञान और कला से सुसज्जित होकर निकलें, पूरे समाज की सेवा है। एक आदमी पर दूसरे लोगों के अधिकार भी लागू होते हैं और समाज के अधिकार भी। इन दोनों तरह के अधिकारों को अदा करना उसके लिए ज़रूरी है। एक तरफ़ बीवी-बच्चों, सगे-सम्बन्धियों की माँगों को पूरा करना भी उसपर फ़र्ज़ है और दूसरी तरफ़ उन तक़ाज़ों को

भी वह नज़रअन्दाज़ नहीं कर सकता, जो किसी समाज के अंग होने की हैसियत से उस पर लागू होते हैं। किसी समाज का अच्छा आदमी वही है जो उन दोनों तरह के तक़ाज़ों को सामने रखे और उनके पूरा करने में कोताही न न करे। हर आदमी को अपने क़रीब के लोगों से मुहब्बत होती है और दूसरों पर उनको तरजीह देता है। यह जज़्बा फ़ितरी है और एक हद तक इसका ख़याल रखना भी सही है। लेकिन कुछ लोग समाज को नुक़सान पहुँचाकर अपने क़रीबी लोगों का फ़ायदा चाहते हैं। इस तरह के लोग समाज के बुरा चाहनेवाले हैं। किसी समाज का ख़ैरख़ाह वह आदमी है जो अपने क़रीबी लोगों की ख़ातिर भी समाज़ को नक़ुसान न पहुँचाए और हर दम उसकी भलाई चाहे।

कोई भी समाज उस वक़्त तरक़्क़ी कर सकता है, जबकि उसमें ऐसे लोग मौजूद हों जो उसको ऊपर उठाने के लिए पूरी कोशिश करें, और उसे किसी तरह का नुक़सान न पहुँचने दें। इस्लाम ने जहाँ इस बात की ताकीद की है कि इनसान अपने क़रीबी लोगों के हुक़ूक़ अदा करे, वहीं इस बात की तरफ़ भी उभारा है कि वह समाज को फ़ायदा पहुँचाए और इसकी भलाई, कामयाबी और तरक़्क़ी (उन्नति) की कोशिश करे। इसलिए उसने सामूहिक हित के कामों की तरफ़ बार-बार ध्यान दिलाया है और इनको बहुत अहमियत दी है। इसका अन्दाज़ा नीचे लिखी हदीसों से हो सकता है—

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, ''मैंने एक आदमी को जन्नत में चलते-फिरते देखा। (जिसका ख़ास अमल यह था कि) उसने रास्ते से एक ऐसा पेड़ काट दिया था, जो लोगों को तकलीफ़ दे रहा था।''(हदीस : मिश्कात, मुस्लिम)

मतलब यह है कि उसने लोगों के रास्ते से एक तकलीफ़ दूर की तो उसके लिए जन्नत की राह आसान हो गई। और किसी रुकावट के बग़ैर जन्नत के हरे-भरे बाग़ों में घूमना उसके लिए मुमकिन हो गया।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) ही की एक और हदीस है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "एक आदमी ने रास्ता चलते देखा कि रास्ते के बीच में एक बड़ी डाल पड़ी हुई है। उसने यह सोचकर कि इससे किसी को तकलीफ़ न पहुँचे उसे वहाँ से हटा दिया। (अल्लाह को इसका यह काम पसन्द आया कि इसके बदले में) उसने इसे जन्नत में दाख़िल कर दिया।" (हदीस : मिश्कात, बुख़ारी, मुस्लिम)

ऊपर की हदीस में लोगों को तकलीफ़ देनेवाले एक पेड़ को काट देने पर जन्नत का हक़दार बना दिया गया था। लेकिन हदीस में सिर्फ़ एक डाल हटा देने पर इसकी ख़ुशख़बरी दी गई है। इसका मतलब यह है कि लोगों के रास्ते से छोटी-से-छोटी तकलीफ़ दूर करना और उनको मामूली-से-मामूली फ़ायदा पहुँचाना भी इनसान को जन्नत जैसी हमेशा रहनेवाली नेमत का हक़दार बनाता है।

(3) हज़रत साद-इब्ने-उबादा (रज़ि॰) की माँ का देहान्त हुआ तो उन्होंने चाहा कि अपनी माँ की तरफ़ से सदक़ा-ख़ैरात (दान) करें। इस मक़सद से उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से सवाल किया कि कौन-सा सदक़ा (दान) सबसे अच्छा है? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "कुआँ खुदवा दो।" इसलिए उन्होंने अपनी माँ के नाम से कुआँ खुदवा दिया। (हदीस : मिश्कात, अबू-दाऊद, नसई)

कुआँ खुदवाना जन-सेवा की एक सूरत है। ऐसी और भी बहुत सी शक्लें हो सकती हैं। यह हदीस बताती है कि जो आदमी ख़ुदा की राह में ख़र्च करना चाहे उसे अपनी दौलत जन-सेवा के कामों में लगानी चाहिए। यह सबसे अच्छा सदक़ा है।

(4) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) ने नबी (सल्ल॰) से अर्ज़ किया कि आप मुझे कोई ऐसी बात बता दीजिए कि मैं उससे फ़ायदा उठा सकूँ।

आप (सल्ल॰) ने जवाब दिया, "मुसलमानों के रास्ते से तकलीफ़ दूर कर दो।" (हदीस : मिश्कात, मुस्लिम)

यह हदीस बहुत ही जामेअ (संग्राहक) है। इसमें इस बात की तरफ़ उभारा गया है कि मुसलमानों के रास्ते से छोटी-बड़ी हर तरह की तकलीफ़ को दूर करने की कोशिश की जाए। रास्ते से काँटे, पत्थर और रोड़े का हटा देना भी सवाब का काम है। इससे इनसान को आख़िरत (परलोक) में यक़ीनन फ़ायदा पहुँचेगा। लेकिन इससे ज़्यादा ज़रूरी बात यह है कि समाज से वे बड़ी-बड़ी आर्थिक और नैतिक रुकावटें दूर की जाएँ जिनके बग़ैर वह तरक़्क़ी नहीं कर सकता। जो क़ौम ग़रीबी, मुहताजी, बीमारी और जिहालत में गिरफ़्तार हो, जिसके अन्दर क़ौमी और गरोही पक्षपात पनप रहे हों, जो बड़े कामों के लिए क़ुरबानी न दे सके, वह कभी इज़्ज़त और सरबुलन्दी नहीं हासिल कर सकती। इसकी सबसे बड़ी ख़िदमत यह है कि अख़लाक़ी लिहाज़ से ऊपर उठाया जाए और आर्थिक (माद्दी) लिहाज़ से इसको मज़बूत बनाया जाए।

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) की एक और रिवायत है। कहते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मोमिन के मरने के बाद भी जिन कामों और नेकियों का सवाब उसे पहुँचता रहता है इनमें ये चीज़ें भी दाख़िल हैं— वह इल्म (ज्ञान) जो उसने सीखा और दुनिया में फैलाया। उसकी नेक औलाद (क्योंकि इसको नेकी की राह पर लगाने में उसकी कोशिशों का भी दख़ल था), क़ुरआन मजीद, जो उसने अपने बाद छोड़ा (जिससे लोग फ़ायदा उठा रहे हैं), मस्जिद जो उसने बनवाई, मुसाफ़िरख़ाना जो उसने बनवाया, नहर जो उसने खुदवाई और वह सदक़ा (दान) जिसे उसने अपने माल से अपनी ज़िन्दगी में सेहत की हालत में निकाला।" (हदीस : मिश्कात, बैहक़ी, इब्ने-माजा)

ये हदीसें इस अहमियत को ज़ाहिर करती हैं जो शरीअत (इस्लामी क़ानून) ने जन-सेवा के कामों को दी है। ये उसके नज़दीक हमेशा जारी रहनेवाले सदक़े हैं, जिनके अज्र व सवाब की वह अपनी ज़िन्दगी के बाद भी उम्मीद कर सकता है।

(4) समाज-सेवी संस्थाएँ

एक व्यक्ति के पास ताक़त की थोड़ी-सी पूँजी होती है। वह जन-सेवा और आम लोगों की सेवा के कुछ बड़े कामों को पूरा नहीं कर सकता। इसके लिए ज़रूरी है कि बहुत-से लोग मिल-जुलकर सुसंगठित तरीक़े से कोशिश करें। संगठन की ख़ूबी यह है कि वह बहुत-से लोगों की ताक़त का इस्तेमाल करती है। इसलिए इसकी ताक़त भी बहुत ज़्यादा होती है। और संगठन ऐसे काम कर जाता है जो एक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं होते। जिस मक़सद को हासिल करने को व्यक्ति कठिन समझता है, संगठन के द्वारा वह मक़सद आसानी से हासिल हो जाता है। अगर जन-सेवा की संगठित रूप से कोशिश की जाए और मिल-जुलकर समाज की भलाई और उन्नति के काम किए जाएँ तो उनके फ़ायदों का दायरा व्यापक होगा और जिन कामों को व्यक्ति अहमियत देने के बावजूद पूरा नहीं कर पाता, वे पूरे किए जा सकेंगे। इस्लाम जन-सेवा की संगठित कोशिश को पसन्द करता है और इसका प्रोत्साहन करता है। इस मक़सद के लिए वह ग़ैर-मुस्लिम संगठनों के साथ सहयोग के लिए तैयार रहे; क्योंकि यह उसकी शिक्षाओं के बिल्कुल अनुकूल है और इससे उसी का एक अहम मक़सद पूरा होता है।

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के दुनिया में आने से पहले अरब में कोई मज़बूत राजनीतिक व्यवस्था नहीं थी, जिसकी वजह से एक तरह का राजनीतिक और सामाजिक बिगाड़ पाया जाता था और लोगों की

जान-माल सुरक्षित न थे। कभी-कभी जो ताक़तवर होता, कमज़ोर पर ज़्यादती कर बैठता और उससे कोई पूछ-गछ न कर पाता। ज़रा-ज़रा बात पर लड़ाई-झगड़ा, ख़ून-ख़राबा और ज़ुल्मो-ज़्यादती का बाज़ार गर्म हो जाता। कोई उसको रोकनेवाला न था। मक्का जैसे शान्ति-स्थल और केन्द्रीय शहर की हालत भी कुछ अच्छी न थी। इस बिगड़ी हालत को कुछ दर्दमन्द और शरीफ़ लोगों ने बदलना चाहा और मशविरे के लिए अब्दुल्लाह-बिन-जुदआन के मकान पर जमा हुए और यह फ़ैसला किया कि ज़ुल्म और ज़्यादती को हर क़ीमत पर रोका जाएगा। किसी भी व्यक्ति पर चाहे वह मक्का का रहनेवाला हो या बाहर से आया हुआ हो, ज़ुल्म न होने दिया जाएगा, ज़ालिम के ख़िलाफ़ मज़लूम की हिमायत की जाएगी और उसे उसका हक़ दिलवाया जाएगा। ज़रूरतमन्दों और मुहताजों की मदद की जाएगी।

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) भी इस समझौते में शामिल थे। यह समझौता आप (सल्ल॰) के नबी बनाए जाने से पहले हुआ था। लेकिन नबी होने के बाद भी आप (सल्ल॰) ने इसकी तारीफ़ (प्रशंसा) करते हुए फ़रमाया—

> "मैं अब्दुल्लाह-बिन-जुदआन के घर में एक ऐसे समझौते में शरीक हुआ कि मुझे उसके बदले सुर्ख़ ऊँट (अरब की सबसे बड़ी दौलत) भी पसन्द नहीं है। अगर इस्लाम के बाद भी मुझे इसकी दावत दी जाए तो मैं उसे क़बूल करूँगा।"
>
> (इब्ने-साद 1/129, इब्ने-हिशाम 1/144,145)

ज़ुल्म और अन्याय को ख़त्म करने, इनसानों की भलाई और तरक़्क़ी, और उनकी ख़िदमत के लिए जो संस्था काम करती है वह समाज की बहुत बड़ी पूँजी है। जो समाज इस क़ीमती पूँजी से ख़ाली हो वह

दीवालिया हो जाता है। इस्लाम इसका रक्षक भी है और इसको तरक़्क़ी भी देना चाहता है।

(5) शासन से सहयोग

जनता की सेवा की सबसे बड़ी संस्था हुकूमत है। व्यक्ति और संगठन चाहे जितने शक्ति-सम्पन्न हों इनकी ताक़त बहरहाल सीमित होती है। इनको उतने संसाधन हासिल नहीं होते कि हर पहलू से समाज की सेवा कर सकें और इसकी तमाम कठिनाइयों को दूर कर दें। हुकूमत ग़ैर-मामूली संसाधन की मालिक होती है और अपने मक़सद को हासिल करने के लिए विभिन्न तरीक़े इस्तेमाल कर सकती है। इसलिए एक कल्याणकारी राज्य की यह क़ानूनी और अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी समझी जाती है कि पूरे समाज का निर्माण इस ढंग से करे कि कोई भी आदमी ज़िन्दगी गुज़ारने के ज़रीओं से महरूम न रहे। उसे वे तमाम सहूलतें और मौक़े हासिल हों जो उसकी तरक़्क़ी के लिए ज़रूरी हैं। अगर हुकूमत अपनी ज़िम्मेदारी को महसूस न करे तो उसका वजूद बेमानी है। लेकिन हुकूमत इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी उसी वक़्त बख़ूबी पूरी कर सकती है, जबकि लोग उसके साथ सहयोग करें। केवल हुकूमत की कोशिश से समाज ग़रीबी, भुखमरी, जिहालत, बेरोज़गारी और बीमारी जैसी मुसीबतों से पाक-साफ़ नहीं हो सकता। इसके लिए ज़रूरी है कि हर व्यक्ति में समाज को गहरी खाई से निकालने और ऊपर उठाने की भावना पाई जाए। हुकूमत और जनता दोनों के सहयोग से ही समाज और जन-सेवा का हक़ अदा हो सकता है। इसके बग़ैर यह काम हमेशा अधूरा और नाक़िस ही रहेगा।

सेवा का व्यापक अर्थ

किसी की ख़िदमत (सेवा) और उसके साथ अच्छे सुलूक का अर्थ यही नहीं है कि उसकी माली मदद की जाए और उसकी भौतिक ज़रूरतें पूरी कर दी जाएँ, बल्कि इसमें मुहब्बत, हमदर्दी, दिलजोई और उम्दा अख़लाक़ी रवैया भी दाख़िल है, जो एक शरीफ़ इनसान दूसरे इनसान के साथ अपनाता है और जिसे अच्छा व्यवहार कहा जाता है। इस दुनिया में इनसान इसी का मुहताज नहीं है कि पेट भरने के लिए उसे दो वक़्त रोटी, तन ढाँकने के लिए कपड़ा और सिर छिपाने लिए मकान मिल जाए; अगर व़ह बीमार पड़ जाए तो उसे अस्पताल पहुँचा दिया जाए, बल्कि वह यह भी चाहता है कि वह ग़रीब और मुहताज है तो उसे छोटा और नीच न समझा जाए, उसके साथ भाईचारा और बराबरी का बरताव किया जाए। वह बीमार है तो उसकी दवा इत्यादि का ही इन्तिज़ाम न किया जाए, बल्कि उसकी ख़िदमत और देखभाल भी की जाए। उसमें कोई ख़ूबी है तो उसको स्वीकार किया जाए। उससे कोई ग़लती हो जाए तो माफ़ी और दरगुज़र से काम लिया जाए। उसकी ख़ुशी और ग़म में शामिल हुआ जाए और ठोस अर्थिक सहयोग के साथ बातचीत, मेल-जोल और सम्बन्धों में भी उमंदा अख़लाक़ी रवैया अपनाया जाए।

क़ुरआन मजीद और हदीस के मुताबिक़ इसके बग़ैर ख़िदमत और अच्छे व्यवहार की धारणा पूरी नहीं होती। इसकी एक अच्छी मिसाल यह है कि माँ-बाप इसी के मुहताज नहीं होते कि औलाद उनके खाने-कपड़े का प्रबन्ध कर दे, बल्कि वे औलाद से ऐसी मुहब्बत और हमदर्दी के भी तालिब (इच्छुक) होते हैं जो उनके बुढ़ापे की तकलीफ़ों को दूर कर दे। उनको यह एहसास न होने दे कि वे समाज में अकेले, तनहा और बेकार होकर रह गए हैं। उनके बुढ़ापे और बुज़ुर्गी का ख़याल और लिहाज़ करे।

उनको अपना बड़ा माने और उनके साथ एहतिराम और इज़्ज़त से पेश आए। क़ुरआन मजीद ने औलाद को उनकी आर्थिक देखभाल का ही हुक्म नहीं दिया, बल्कि उनके साथ अच्छे सुलूक की ताकीद भी की है, जिसमें अर्थिक देखभाल का दरजा सबसे पहले आता है।

अब देखिए, क़ुरआन मजीद में माँ-बाप के साथ अच्छे व्यवहार की धारणा क्या है—

> "माँ-बाप में से कोई एक या दोनों तुम्हारे पास बुढ़ापे को पहुँच जाएँ तो उन्हें उफ़ तक न कहो। और न उनको झिड़को और उनके साथ अदब और तहज़ीब से बात करो। और नरमी और रहम के साथ उनके सामने झुके रहो। और उनके लिए दुआ करो कि ऐ अल्लाह! तू उनके साथ उसी तरह रहम फ़रमा जिस तरह उन्होंने प्यार और हमदर्दी से मुझे बचपन में पाला था।"
>
> (क़ुरआन, 17:23,24)

कभी-कभी हमदर्दी का एक शब्द, मुहब्बत भरी एक एक बात और एक भली बात की आर्थिक सहयोग से ज़्यादा क़द्र व क़ीमत होती है। क़ुरआन मजीद ने मीठी बोली और बात करने के अच्छे तरीक़े को इतनी अहमियत दी है कि एक जगह नमाज़ और ज़कात से पहले इसको बयान किया है—

> "और लोगों से अच्छे तरीक़े से बात करो। नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दो।" (क़ुरआन, 2:83)

एक ग़रीब और मुहताज आदमी की सेवा तो रुपये-पैसे से की जा सकती है, लेकिन जिसके पास ख़ुद दौलत है उसे हमारे पैसे की कोई ज़रूरत नहीं है, अलबत्ता हमदर्दी और मुहब्बत और अख़लाक़ी रवैये का मुहताज हर आदमी है। इससे न कोई अमीर बेनियाज़ हो सकता है, न कोई फ़क़ीर।

मानव-सेवा के कुछ और पहलू

हदीसों में इस पहलू को बहुत नुमायाँ किया गया है कि इनसानों की ख़िदमत रुपये-पैसे ही के ज़रीए नहीं होती बल्कि किसी ज़रूरतमन्द की मदद करना, किसी अन्धे को रास्ता दिखाना, रास्ते से कोई तकलीफ़ दूर करना, किसी को पानी भरके दे देना, यहाँ तक कि किसी से प्यार से मिलना और अच्छा सुलूक करना यह भी उनकी ख़िदमत है, और रुपये-पैसे ख़र्च करने की तरह यह भी सदक़ा है।

हज़रत अबू-मूसा अशअरी (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "हर मुसलमान पर सदक़ा (दान) करना वाजिब (अनिवार्य) है।" इस पर सहाबा (रज़ि॰) ने सवाल किया कि अगर किसी के पास सदक़ा करने के लिए कुछ न हो तो क्या किया जाए? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मेहनत करे, जो मिले उससे ख़ुद भी फ़ायदा उठाए और दूसरों को भी फ़ायदा पहुँचाए।"

लोगों ने पूछा, "अगर इसकी ताक़त न हो तो क्या किया जाए?"

आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "किसी ज़रूरतमन्द और परेशान हाल की (माल के अलावा किसी और तरीक़े से) मदद करे।" लोगों ने अर्ज़ किया कि अगर इसकी भी ताक़त न हो तो क्या किया जाए? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "भलाई का हुक्म दे।" कहा गया कि अगर कोई आदमी यह भी न कर सके तो उसके लिए क्या हिदायत है? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "वह बुराई से रुक जाए। यह भी उसके लिए सदक़ा (दान) है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

एक बार आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "सूरज जब निकलता होता है तो इनसान के जोड़-जोड़ पर सदक़ा वाजिब (ज़रूरी) हो जाता है।" (लेकिन सदक़ा सिर्फ़ माल ही से नहीं किया जाता बल्कि) दो आदमियों

के बीच इनसाफ़ कर दो, यह भी सदक़ा है। किसी को जानवर पर सवार होने में मदद कर दो, यह भी सदक़ा है। सवारी पर किसी का समान रख दो, यह भी सदक़ा है। ज़बान से अच्छी तरह बात करो, यह भी सदक़ा है। इसी तरह नमाज़ के लिए उठनेवाला तुम्हारा हर क़दम सदक़ा है। रास्ते से किसी तकलीफ़ देनेवाली चीज़ को दूर कर दो, यह भी सदक़ा है।" (हदीस : मुस्लिम)

एक बार आप (सल्ल॰) ने जहन्नम की हौलनाकी का ज़िक्र किया और फ़रमाया, "(सदक़ा के ज़रीए से) जहन्नम से बचो। अगर कुछ न हो तो छुहारे का एक टुकड़ा ही सही। यह भी न हो तो ज़बान से अच्छी बात करके ही उससे बचो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

एक और हदीस में है। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "नेकी का हर काम सदक़ा है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

सही बात यह है कि इनसानों की ख़िदमत और उनके साथ ख़ैरख़ाही का दायरा इतना बड़ा है कि हर आदमी इस मैदान में अपना हक़ अदा कर सकता है। और उसे हक़ीक़त में अदा करना ही चाहिए। इसके लिए न तो मालदार होना ज़रूरी है और न हुकूमत व रियासत की मदद ही की ज़रूरत है। सही बात यह है कि दौलत या किसी चीज़, या हुकूमत व रियासत के ज़रीए सिर्फ़ कुछ ही पहलुओं में इनसानों की ख़िदमत हो सकती है। बहुत-से पहलू ऐसे हैं जहाँ आदमी का उच्च-चरित्र और बुलन्द किरदार ही काम आ सकता है। हुकूमत व रियासत किसी ज़रूरतमन्द को वज़ीफ़ा, किसी बेरोज़गार को रोज़गार, किसी बेघर को मकान और किसी मरीज़ की इलाज के रूप में मदद तो कर सकती है, लेकिन तमाम संसाधनों के बावजूद बाप, बेटे, भाई, दोस्त, पड़ोसी और शरीफ़ शहरी का बदल नहीं बन सकती, जो

जज़्बाती सुकून और उमदा सुलूक उसको इन लोगों से मिल सकता है वह हुकूमत के छोटे-बड़े किसी इदारे से नहीं मिल सकता।

बिना भेद-भाव मानव-सेवा

अच्छा बरताव और सुलूक किसी ख़ास गरोह और जमाअत के साथ नहीं, बल्कि पूरी मानव-जाति के साथ होना चाहिए। अपनों के साथ भी और परायों के साथ भी; सहमत और हम अक़ीदा (सह-आस्था) लोगों के साथ भी और उन लोगों के साथ भी जो हम से मतभेद रखते हैं, वे भी इसके हक़दार हैं जो हमारी ज़बान बोलते हैं और वे भी जिनके इज़हार का ज़रीआ दूसरी भाषा है। यही क़ुरआन मजीद की शिक्षा है और हदीस से इसकी ताईद (पुष्टि) होती है। इसलिए क़ुरआन मजीद ने ग़रीबों, मुहताजों, लाचारों, यतीमों, माँगनेवालों और संसाधनों से वंचित इनसानों की ख़िदमत और उनके साथ अच्छे बरताव का आम हुक्म दिया है। कहीं भी उसने यह हिदायत नहीं की कि किसी ख़ास समुदाय, जमाअत और रंग-रूप और नस्लवालों की तो ख़िदमत की जाए और दूसरों की न की जाए।

इसलिए यह बात सही नहीं है, बल्कि क़ुरआन मजीद की तालीम और मंशा के ख़िलाफ़ है कि इनसानों को गरोहों और जमाअतों में बाँट दिया जाए और कुछ को ख़िदमत और अच्छे सुलूक का हक़दार समझा जाए और कुछ को इसका हक़दार न समझा जाए।

हदीसों में यह हक़ीक़त बहुत साफ़ और नुमायाँ है। नीचे कुछ हदीसें पेश की जाती हैं—

(1) हज़रत जरीर (रज़ि॰) बिन-अब्दुल्लाह की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जो इनसानों पर रहम (दया) नहीं करता, अल्लाह (भी) उसपर रहम नहीं करता।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

(2) हज़रत अनस (रज़ि॰) और हज़रत अब्दुल्लाह बिन-मसऊद (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "ख़ुदा की मख़लूक़ उसका कुंबा है। ख़ुदा को वह आदमी सबसे ज़्यादा प्यारा है जो उसके कुंबे के साथ अच्छा व्यवहार करे।" (हदीस : बैहक़ी)

(3) हज़रत अब्दुल्लाह बिन-उमर (रज़ि॰) अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की यह हदीस बयान करते हैं कि—

"इनसानों के साथ रहम करनेवालों पर 'रहमान' (भी) रहम करता है। (इसलिए) ज़मीनवालों पर रहम करो, आसमानवाला तुमपर रहम करेगा।" (हदीस : अबू-दाऊद, तिरमिज़ी)

(4) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "रहम और हमदर्दी तो उसी आदमी के सीने से निकाल ली जाती है, जो अभागा है।" (हदीस : अहमद, तिरमिज़ी)

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि कुछ लोग बैठे हुए थे कि नबी (सल्ल॰) ने उनके पास पहुँचकर कहा, "क्या मैं तुम्हें बता दूँ कि तुममें भला कौन है और बुरा कौन?" आप (सल्ल॰) के इस सवाल पर सब लोग चुप रहे, लेकिन जब आप (सल्ल॰) ने तीन बार यही सवाल दोहराया तो एक आदमी ने कहा कि ऐ अल्लाह के नबी (सल्ल॰)! बताइए कि हममें भला कौन है और बुरा कौन? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "तुममें सबसे अच्छा आदमी वह है जिससे भलाई की उम्मीद की जाए और जिसके शर (बुराई) से लोग महफ़ूज़ रहें। तुममें सबसे बुरा आदमी वह है, जिससे भलाई की उम्मीद न की जाए और उसकी बुराई से लोग महफ़ूज़ (सुरक्षित) न रहें।"

(हदीस : तिरमिज़ी, बैहक़ी)

इन हदीसों में किसी भेद-भाव के बग़ैर ख़ुदा की सारी मख़लूक़ के साथ अच्छे सुलूक की तालीम दी गई है। लाचारों, मुहताजों,

बेवाओं, यतीमों और मुसीबत के मारे इनसानों, बीमारों, ग़ुलामों, क़ैदियों की ख़िदमत के लिए किसी तरह की कोई शर्त नहीं लगाई गई है। यह इस बात का सबसे बड़ा सुबूत (प्रमाण) है कि जो भी आदमी हमारी हमदर्दी और मदद का मुहताज है, उसकी मदद की जानी चाहिए। इस मामले में अपने और पराए, जाना-पहचाना और अनजान, सहधर्मी और दूसरे धर्मवाले के बीच फ़र्क़ (भेद-भाव) करना, और किसी को ख़िदमत का हक़दार और किसी को हक़दार न समझना इस्लाम के मिज़ाज और उसकी हिदायत के सरासर ख़िलाफ़ है।

इन हदीसों का दूसरा पहलू यह है कि ये जन-सेवा की अहमियत बयान करती हैं। जो काम रात-दिन की इबादत (उपासना) के बराबर हो, जिससे इनसान ख़ुदा का प्यारा बन्दा बन जाए, जो उसे ख़ुदा से क़रीब कर दे, जिसकी वजह से ख़ुदा की रहमत नाज़िल हो, जो संगदिली और बे-रहमी (निर्दयता) जैसी अख़लाक़ी ख़राबियाँ दूर करने का ज़रीआ हो, जो उसे नेक और सज्जन तथा समाज का बेहतरीन आदमी बना दे, उसकी महानता और महत्ता से एक मुसलमान कैसे इनकार कर सकता है। इसके लिए उसमें इतनी बड़ी तरग़ीब (प्रेरणा) है कि इसके बाद वह किसी दूसरी तरग़ीब का मुहताज नहीं रहता।